Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 11 | ISSUE : 1 | JANUARY 2025

आदिवासी उपन्यासों में निरूपित स्त्री जीवन स्तर

डॉ. कुलदीप सिंह मीना [1] | इन्दु बाला कुमावत [2]

[1] सह आचार्य, हिन्दी विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर.

[2] शोधार्थी, हिन्दी विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर.

ABSTRACT:

हिन्दी में शताधिक उपन्यास आदिवासी केंद्रित है जिनमें आदिवासी स्त्रीजीवन के सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनैतिक आयामों सहित नारीजीवन की तमाम विडम्बनाओं पर भी प्रकाश डाला गया है। अनेक उपन्यासकारों ने बदलते हुए परिवेश में औसत आदिवासी स्त्री के जीवनस्तर में सुधार अथवा गिरावट की और भी ध्यानाकर्षण करवाया है।

इस शोधपत्र में विभिन्न हिन्दी उपन्यासों में उपलब्ध संदर्भों को दृष्टिगत रखते हुए इसी बात पर विचार किया गया है कि समसामयिक परिवेश में आदिवासी स्त्रियों के जीवन स्तर में किस प्रकार सुधार आया है और किन-किन क्षेत्रों में आदिवासी नारी जीवन स्तर में लगातार गिरावट देखी जा रही है।

KEYWORDS:

प्रतिरोध, खदान श्रमिकों, अश्रुप्रदायक, यापी, शिक्षार्जन, प्रतिमूर्ति, कलेक्टरनी बाई, बेहतरी, नीलकण्ठ, चारिबा, जेहल, मंगर, जानगुरु, सौंतालों, दोलियांग, मलारी, बेड़िया, रिपोर्तांज, आमीन।

PAPER ACCEPTED DATE:	PAPER PUBLISHED DATE:
27th January 2025	29th January 2025

प्रस्तावना

आदिवासी विमर्श की दृष्टि से रचे जा रहे आदिवासी साहित्य में विभिन्न सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक बदलावों का समुचित ब्यौरा मिलता है। विभिन्न कविताओं, कहानियों, उपन्यासों, नाटकों एवं अन्य विधाओं में रचित आदिवासी साहित्य में आदिवासी स्त्रियों के जीवनस्तर में आ रहे क्रमिक परिवर्तनों का निरूपण हुआ है। शोध अध्येताओं ने इस धीमे परिवर्तन की ओर संकेत किए है। डॉ. विवेकशंकर लिखते है कि 'शिक्षा की दृष्टि से 1961 में सहरिया महिलाओं में 0.2 प्रतिशत और 1981 में 1.20 प्रतिशत ही स्त्री साक्षरता दर थी। 1982 तक कोई भी सहरिया स्त्री बी.ए. उत्तीर्ण नहीं थी। वर्ष 2001 में सहरियाओं में स्त्री साक्षरता मात्र 5 प्रतिशत ही रही।" हालांकि यह तथ्य धीमे परिवर्तन का सूचक है। राजकीय कन्या महाविद्यालय, बारां में सत्र 2011-12 से स्नातक छात्राओं की संख्या में बढ़ोतरी शुरू हुई और 2014 में यहां सहरिया छात्राओं की संख्या 100 से अधिक हो गई। यह विवरण बताता है कि अब आदिवासी स्त्री के जीवनस्तर में परिवर्तन का दौर शुरू हो चुका है।

विभिन्न हिन्दी आदिवासी उपन्यासों में आदिवासी स्त्रियों की सामाजिक, आर्थिक दशा, रोजगार की स्थिति, धार्मिक-सांस्कृतिक-शैक्षिक-राजनीतिक स्थिति, स्वास्थ्य एवं पोषण स्तर आदि पर यथार्थपरक चिंतनप्रधान सामग्री समाविष्ट है। आदिवासी कथा साहित्य में आदिवासी स्त्री अस्मिता और प्रतिरोध का जिक्र करते हुए डॉ. रमेश चंद्र मीणा ने मणिपुर की इरोम शर्मिला के उदाहरण के माध्यम से लिखा है - "आदिवासी महिला एक सीमा के बाद किसी भी अन्याय को जान हथेली पर रख कर प्रतिरोध कर रही है।"[1]

झारखंड आसाम जैसे आदिवासी बहुल क्षेत्रों से बड़ी तादाद में आदिवासी महिलाओं को शहरों में नौकरी की आशा में पलायन करना पड़ा है। तमाम प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण जब आदिवासी स्त्री को अपनी मातृभूमि छोड़कर अन्यत्र जाना पड़ता है तो उसके जीवनस्तर में गंभीर परिवर्तन आना नैसर्गिक है। उच्च पदों की सरकारी नौकरियों के अलावा अधिकांश घरेलू कामगार महिलाओं एवं कारखानों-भट्टों-खदानों की श्रमिक स्त्रियों का जीवनस्तर तो पुश्तैनी गाँव के जीवनस्तर से भी बदतर हो चला है। संजीव का उपन्यास 'धार' ऐसे ही खदान श्रमिकों के हितों के लिए जूंझती 'मैना' के बलिदान की अश्रुप्रदायक कृति है।

इसी प्रकार आदिवासी केंद्रित विभिन्न उपन्यासों में यह दर्शाया गया है कि बाहरी लोगों से निरंतर दखल, पूंजीवादी घरानों के द्वारा जंगल क्षेत्र में उद्योगों की स्थापना, सरकारी नीतियों के कारण विस्थापन एवं पलायन की मजबूरियां, बढ़ते नक्सलवाद और अन्यान्य बाहरी प्रभावों के कारण सर्वाधिक दुष्प्रभाव तो आदिवासी स्त्रियों पर ही पड़ा है।

कतिपय उपन्यासों में जीवट की धनी, जुझारू आदिवासी कन्याओं के घोर जीवनसंघर्ष उपरांत उच्च पद अर्जित करने से उनके जीवन स्तर में बढ़ोतरी के सार्थक उदाहरण प्रस्तुत किए गए है। यथा पाल एक्का के उपन्यास 'शाम की सुबह (1981) में आदिवासी युवती नर्स बनकर समुदाय की सेवा करती है। नवे दशक के प्रारंभ की यह कृति आदिवासी कन्याओं के लिए अत्यंत प्रेरणास्पद रही। मोर्जुम लोयी के उपन्यास 'मिनाम' में पूर्वोत्तर भारत की सर्वाधिक शिक्षित 'गालो' जनजाति की स्त्रियों के जीवन स्तर में बदलावों का सकारात्मक चित्रण हुआ है। इस उपन्यास में मुख्य स्त्रीपात्र है- यामी, मिनाम, यापी, तोपी, यासी, मां, दादी, याजुम और गांव की भाभियाँ इत्यादि। यामी अपनी मौसी के घर रहती हुई स्नातक परीक्षा के बाद गांव में शिक्षिका के रूप में सेवाएं देती है। गांव में लड़कियों की शिक्षा के बारे मे नकारात्मक धारणा है। माएं कहती - "बेटी छोटे भाई-बहन को देखेगी (संभालेगी) तभी तो वह जंगल जा पाएगी।[2]

तथापि यामी की मेहनत से बच्चियों के अलावा गांव की महिलाएं भी शाम की कक्षाओं में आने लगती है। यामी का पति तातुम प्रायः उसकी पिटाई करता है तथापि वह अपनी दोनों बेटियों यापी और याजुम की पढ़ाई के लिए पति की ज्यादतियां सहती है। निरंतर चिंताग्रस्त यामी के मरणोपरांत प्रोफेसर मिनाम उन दोनों बेटियों की शिक्षा का प्रबंध करती है। मिनाम समाज में विरोधाभास की बात करती है - "मर्द औरत के हक की बात करता है, वही मर्द अपनी औरत को हक नहीं देता है।"[3] तथापि शिक्षार्जन के कारण 'मिनाम' का जीवनस्तर बहुत कुछ बेहतर हो गया है। इसके 15 वर्ष बाद यापी कलेक्टर बनती है व याजुम डॉक्टर बनकर गांव लौटती है। पिता तातुम कहता है- "आज मेरा सिर गर्व से ऊँचा है, तो बेटियों के कारण। नारी देवी की प्रतिमूर्ति होती है। नारी सहनशक्ति की मिसाल होती है, उसकी इज्जत करना सीखो।"[4] इस प्रकार उपन्यासलेखिका ने शिक्षा को आदिवासी स्त्री के बेहतर जीवन स्तर की प्रथम सीढ़ी के रूप में दर्शाया है।

एक अन्य उपन्यास 'हेमंतिया उर्फ कलेक्टरनी बाई' में भी शिक्षा के माध्यम से आदिवासी स्त्री के जीवनस्तर की बेहतरी का आदर्श प्रस्तुत किया गया है।

शिक्षा के माध्यम से आदिवासी स्त्री के जीवनस्तर में परिवर्तन का ही फल है कि महुआ माझी ने 'मैं बोरिशा इल्ला' (2006) जैसा उपन्यास लिखा जिसका अंग्रेजी अनुवाद 'मी बोरिशाइल्ला' (2008) भी सापिएन्जा युनिवर्सिटी ऑफ रोम में माडर्न लिट्रेचर के बी.ए. पाठ्यक्रम में शामिल है।

लेखिका वर्तमान में सांसद (राज्यसभा) है। लेखिका के दूसरे उपन्यास 'मरंग गोड़ा नीलकण्ठ हुआ' (2012) में भारत से बाहर विदेशों के आदिवासियों के वृत्तांत भी शामिल है। समीक्षक विजय मोहन सिंह इस अर्थ में अपने ढंग का पहला उपन्यास मानते है।

'मरंगगोड़ा नीलकण्ठ हुआ' उपन्यास में चारिबा नामक आदिवासी युवती रागेन को बताती है कि 'हो' समुदाय का अन्य जनजातियों से समुचित साम्य है क्योंकि शोधकर्ताओं ने इसके संबंध में पर्याप्त प्रमाण जुटाएं हैं। अर्थात् शिक्षा के द्वारा ही चारिबा को जनजातियों के बारे में प्रागैतिहासिक कालीन शोध परक तथ्यों की जानकारी मिली है। इसी उपन्यास में प्रज्ञा जो लंदन के विश्वविद्यालय की छात्रा है, मरंगगोड़ा क्षेत्र में माओवाद के प्रभाव का अध्ययन करती है।

विभिन्न उपन्यासों में कतिपय जागरूक आदिवासी नारियों के चरित्र चित्रण द्वारा आदिवासी स्त्री-वर्ग में आ रहे सामाजिक बदलावों की ओर संकेत किया गया है। लेखको ने आदिवासी समाज में नारी के बारे में व्याप्त भ्रान्त धारणाओं का खण्डन करते हुए सम्यक् नारी पात्रां का सर्जन किया है।

ये नारीपात्र विभिन्न सामाजिक कुप्रथाओं, कुरीतियों, अंधविश्वासों एवं मिथ्या धारणओं का खुला विरोध दर्ज कराती है क्योंकि ये पूर्वाग्रह-दुराग्रह, ही आदिवासी स्त्री के जीवनस्तर को बद से बदतर बनाए हुए है। उपन्यासों के इन प्रतिनिधि पात्रों ने औसत आदिवासी स्त्री को पुत्री जन्म, शिक्षा, संपत्ति का अधिकार, स्वयंवर की स्वतत्रता, प्रेम विवाह, अंर्तजातीय विवाह, धर्मान्तरण एवं पुनः आदिवासी धर्म में आना, सामाजिक धारणाओं के प्रति नूतन आधुनिक दृष्टिकोण अपनाना इत्यादि के संदर्भ में जीवनस्तर में परिवर्तन हेतु प्रेरित किया है।

संजीव के उपन्यास 'धार' की नायिका मैना अपने कोयलॉचल में तेजाब की फैक्ट्री के मालिक और कर्मचारियों का विरोध करती है लेकिन महेंदर बाबू और उसका अमला षड्यंत्र रचकर मैना को जेल पहुंचा देता है। जेलर के व्यभिचार के कारण मैना एक बच्चा जनमती है परंतु जेल से छूटने पर बच्चे को जेलर के हाथों में छोड़कर चली आती है। जेलर आदेश देता है- "अपना बच्चा यही छोड़कर गई है। तुम कुछ जवानों को लेकर दौड़कर देखो तो।"[5]

यह उदाहरण बताता है कि अन्याय ग्रस्त आदिवासी महिला मानो जेलर को ही सबक सिखाना चाहती है- 'गलती करे कौन, सजा भोगे कौन?"[6]

मैना कबाड़ी मंगर को बताती है कि उसने खुद अपने पति को छोड़ रखा है-

"काहे मरद औरत को छोड सकता और औरत मरद को नई छोड़ सकता?"[7]

कथा समीक्षक मधुरेश लिखते है- "वह नहीं मानती कि उसके पति ने उसको छोड़ा है। यदि मर्द औरत को छोड़ सकता है तो क्या औरत मर्द को नहीं छोड़ सकती? वह पढ़ी लिखी शहरी औरत नहीं है।"[8]

यह दृष्टांत बताता है कि आदिवासी स्त्री के जीवनस्तर में आ रहे परिवर्तनों को लेकर उपन्यासकार सतर्क है।

हालांकि एक मां होने के नाते मैना वाद में उस बच्चें और अन्य रिहा कैदी मगर को लेकर अपने गांव आ जाती है लेकिन गांव की औरतें खुसर-पुसर करती हैं-

"अरे बाप रे, जेहल जाएगा ऊ सबको एक-एक ठो मरद और बच्चा मिलेगा।"[9]

इतना होते हुए भी मैना सहन करती है और वह सदैव मगर का बचाव करती है।

'धार' उपन्यास की मैना यह उदाहरण पेश करती है कि तलाक देना केवल मर्दों का ही हक नहीं है, औरतें भी प्रतिकूल परिस्थितयों में अयोग्य पति को छोड़ने का हक रखती है। आदिवासी स्त्री की वैचारिकता में यह परिवर्तन रेखांकित किए जाने योग्य है। इसी प्रकार प्रायः मर्दों को औरतों का रखवाला माना गया है। लेकिन मैना अपने नए पति मंगर की रखवाली करती दिखाई देती है।

संथाल परगना में ठेकेदारों ने जंगल के जंगल कटवा दिए हैं। लिहाजा अब संथालों की मृत्यु के बाद दाह संस्कार के बजाय कब्र में गाड़ा जाने लगा है। मैना अपने दिवंगत पिता के अंतिम संस्कार के लिए जानगुरु (ओझा) को चोरी की लकड़ियां लेने से साफ मना कर देती है- "कआँ-कआँ दिलवाएगा आप चोरी की सिलीर (लकड़ी), सौतालों का सब जगंल चरकर तो चिक्कन कर दिए? अब है कआँ लकड़ी कि धम्म बचे? जिस सौंताल परगना में जंगल-ई-जगंल था, हुआ अब लाश फूकने को लकड़ी नई? सब सौंताल को कबर दिया जा रहा है तो हमरा बाप का भी कबर होगा।"[10] उपन्यासकार बताता है कि प्रतिकूल परिस्थितियों में अब तो कब्र ही बेहतर विकल्प बचा है।

इसी प्रकार अन्य उपन्यासों में बताया गया है कि तमाम प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण विवश आदिवासी स्त्रियां अब अपने पूर्वजों से भी बदतर जीवनस्तर पर काम चला रही है।

आज आदिवासी स्त्री को तमाम अंधविश्वासों से ऊपर उठने की जरुरत है जिनके कारण उनको कष्ट उठाने पड़ते रहे है। 'जंगली फूल' उपन्यास की दोलियांग खुद कुआरी रहकर भी अपने भाई तानी के लिए तीन-तीन शादियों की व्यवस्था करती है। 'वह चाहती है अधिक से अधिक बच्चे पैदा हो, कबीला बडे से बडा हो।'[11]

दोलियांग अनेक सामाजिक रूढियों के खिलाफ है। बलि प्रथा के खोखलेपन पर वह बुलंद स्वर में कहती है- "माता कभी किसी की बलि नहीं मांगती। यदि मांगती तो उन्हें हम माता नहीं कहते।"[12] इस प्रकार प्रारंभिक आदिवासी उपन्यासों में जहां आदिवासी स्त्री को अंधविश्वासों का दुष्प्रभाव झेलते हुए दिखाया जाता रहा, वहीं नई सदी के उपन्यासों में आदिवासी स्त्री की विचारशक्ति में तर्कसम्मत परिवर्तनों की शुरूआत झलकती है। जाहिर है कि ऐसे नारीपात्र तमाम दुख झेलकर भी आदिवासी स्त्रीसमाज को नव प्रेरणा से ओतप्रोत कर देते है। 'जंगली फूल' उपन्यास की लेखिका ने 'मिनाम' और 'मताई' उपन्यासों की लेखिकाओं की ही भांति नूतन सोच और परिवक्व दृष्टिकोण वाले नारी पात्रों का सर्जन करते हुए आदिवासी स्त्री के जीवन स्तर में आ रहे परिवर्तन का ही चित्रण किया है। 'मताई' उपन्यास की लेखिका ने भील समाज में मताई माता के लिए नर-बलि की परंपरा को स्थायीरूपेण खत्म करने में सहयोग रमती, सोमी आदि नारिपात्रों एवं कमजी के रूप में पुरूष पात्र की सृष्टि की है अर्थात् स्त्री-समाज के जीवन स्तर में सुधार के लिए पुरूषों को भी पूरा सहयोग करना चाहिए।

'जंगल जहां शुरू होता है' उपन्यास में मलारी एक रात के लिए मजबूरीवश पुलिस अफसर कुमार को अपनी देह सौपंती हुई पूछती है- "हुजूर आप हाकिम है, नियाव करिए। हमारा मरद अगर आपका जनाना से एई सलूक करे तो आप लोगों को कैसा लगेगा?"[13] मलारी की यह स्त्री चेतना किसी भी तथाकथित सभ्यसमाज के पुरूष को अंदर तक तिलमिला देने वाली प्रतीत होती है। यही तो आदिवासी स्त्री के जीवनयथार्थ का नूतन पक्ष है जहां वह परिवर्तन के लिए जूंझती है।

अन्य आदिवासी उपन्यासों मे भी स्त्री के जीवन स्तर में परिवर्तन के ऐसे उदाहरण मिलते है। प्रस्तुत उपन्यास की समीक्षा में मधुरेश जी लिखते है- "धारू जनजाति की स्त्रियों के बारे में यह आम धारणा है कि वे अधिक निर्बन्ध और कामुक होती है और मर्द अधितकर जनाना। यही कारण है कि ये औरतें अपने लिए पूरा मर्द खोजती है जो उन्हें प्रायः अपने समुदाय के बाहर ही मिलता है। इसीलिए दूसरे समाजों के पुरूषों के लिए वे न सिर्फ सहज बेध्य होती है, उनसे मिलकर वे एक संकर समाज की रचना भी करती है। बिसराम बहू और मलारी के आधार पर कथाकार संजीव प्रचलित (भ्रामक) धारणा को तोड़ते हैं।"[14]

वस्तुतः आदिवासी स्त्रियों के बारे में विभिन्न धारणाओं के मूल में पितृसत्तात्मक व्यवस्था ही उत्तरदायी है। "पिछले पन्ने की औरतें" उपन्यास में लेखिका कहती है- "समाज में औरत का स्वरूप पुरूषों द्वारा निर्धारित किया गया है। इसीलिए विभिन्न समुदायों में औरत के स्वरूप में भिन्नता मिलती है। इसका सबसे ज्वलंत उदाहरण बेड़िया समुदाय की औरते हैं। अधिकांश बेड़िया औरतों को अविवाहित रहना पड़ता है और किसी न किसी धनिक की रखैल' बनना पड़ता है।"[15] इस समाज में रजस्वला प्राप्त पुत्रियों को 'सिर ढंकना' की रस्म द्वारा प्रथम वार सहवास का अनुभव कराया जाता है और तदुपरांत यह उन्मुक्त भाव से देह व्यापार प्रारंभ कर देती है। लेखिका शरदसिंह ने इस उपन्यास में रिपोर्ताज शैली का प्रयोग किया है।

'पिछले पन्ने की औरतें' उपन्यास में लेखिका ने राईनृत्य के लिए मशहूर 'बेडती' (बेड़िया स्त्री) की प्रतिकूल परिस्थितियों के मार्मिक विवरणों के साथ वेश्यावृत्ति के पीछे अनेक कारणों का खुलासा किया है। इनमें से - दूसरा प्रेरक कारण है जीवन स्तर को ऊंचा उठाने की तीव्र लालसा, जो किसी औरत को वेश्यावृत्ति से जोड़ता है। यह प्रवृत्ति उन औरतों में अधिकतर पाई जाती है जो दूसरों के उच्च जीवनस्तर को देखकर ललचाने लगती हें। उन्हे यह लगने लगता है कि ठीक उसी प्रकार का जीवन स्तर उनका भी होना चाहिए, चाहे जैसे भी हो।"[16] इसके अलावा लेखिका ने बेडनियों की अन्य मजबूरियों पर भी प्रकाश डाला है। उपन्यास के अंत तक पहुंचते पहुंचते बेडनी श्यामा का हदय परिवर्तन होता है और इस घिनौने धंधे को

छोड़ने का दृढ़ निश्चय कर लेती है। जब नैरेटर पूछती है- "तो फिर बेटियों को कैसे पालोगी?" श्यामा का उत्तर था- "किसी भी तरह, लेकिन इस तरह नही! मुझे अब गुड्डी और माधुरी को लेकर इन सबसे दूर जाना होगा, नहीं तो इनका जीवन नरक बन जाएगा।" लेखिका श्यामा से विदा लेकर लौटते हुए सोचती है- "लेकिन गुड्डी के निश्चय को देखकर मुझे लगा कि नचनारी, रसूबाई, चंदा, फुलवा और श्यामा जैसी औरतों ने जिस आशा की लौ को अपने मन में संजोया था, वह अभी बुझी नहीं है। हां, श्यामा ही शायद वह औरत हो जो अपनी बेटी गुड्डी के रूप में अपने बेडिया समुदाय की औरतों को पिछले पन्ने से निकालकर विकास की मुख्यधारा के अगले पन्ने पर ले आए आमीन।"[17]

आदिवासी स्त्रियों के जीवनस्तर में परिवर्तन की प्रक्रिया और अवधि के बारे में शरदसिंह अपने उपन्यास में लिखती हैं-

"ऐसा कम ही हुआ है कि एक-डेढ़ दशक की छोटी सी अवधि में किसी समुदाय विशेष की समाजिक स्थिति अथवा विचारों में आमूलचूल परिवर्तन हो जाए। कोई भी बड़ा परिवर्तन पर्याप्त और आवश्यक समय की मांग करता है। बेड़िया समुदाय में परिवर्तन की कोपलें फूटनी बीसवीं सदी के अंतिम दशक में शुरू हुई।"[18]

निष्कर्ष:-

कहना ही होगा कि आदिवासी उपन्यासों में जहां आदिवासी स्त्री जीवनस्तर में गिरावट के प्रति गंभीर चिंता अभिव्यक्त की गई है वही प्रेरक नर-नारी पात्रों के माध्यम से आदिवासी स्त्रियों के जीवन स्तर में सुधार के लिए प्रेरणास्पद घटनाक्रम एवं सार्थक सुझाव भी प्रस्तुत किए गए हैं।

REFERENCES

1. मीणा, डॉ. रमेशचंद (संपा.) आदिवासी विमर्श

राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर 2013, पृ. सं. 66

2. खान, डॉ. एम. फीरोज एवं अन्य (संपा.) आदिवासी उपन्यासः दशा एवं दिशा भाग 2

विकास प्रकाशन, कानपुर, प्र. सं. 2024 पृ. सं. 93

3. लोयी, मोर्जुम; मिनाम (उपन्यास)

बोधि प्रकाशन, जयपुर, प्र.सं. 20202 पृ. सं. 57

4. वही, पृ.सं. 148

5. संजीव; धार (उपन्यास), लोकभारती पेपरबैक्स, दिल्ली, प्र.सं. 1990, पृ. सं. 09

6. वही, पृ. सं. 12

7. वही, पृ. सं. 13

8. खान, डॉ. एम. फिरोज एवं अन्य (संपा), वही, पृ. सं. 65

9. संजीव; धार, पृ. सं. 16

10. वही, पृ. सं. 70

11. मीणा, डॉ. रमेशचन्द्र; समकालीन विमर्शवादी उपन्यास

अनुज्ञा बुक्स, नई दिल्ली, पुनर्मुद्रित द्वि.सं. 2022, पृ.सं. 82

12. जोराम, यालाम; जंगली फूल (उपन्यास)

अनुज्ञा प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2013 पृ.सं. 80

13. संजीव, जंगल जहां शुरू होता है (उपन्यास)

लोकभारती पेपरवैक्स, दिल्ली, प्र.सं. 2000, पृ. सं. 175

14. खान, डॉ. एम. फीरोज एवं अन्य (संपा.) वही, पृ.सं. 74

15. श्रीमती शरदसिंह; पिछले पन्ने की औरतें (उपन्यास)

सामयिक पेपरवैक्स, दिल्ली, संस्करण 2022, पृ.सं. 150

16. वही, पृ.सं 194

17. वही, पृ.सं. 304

18. वही, पृ.सं. 167